THE HINDU

Date: 21-01-26

Bridging the Gulf

India must tread cautiously as it negotiates defence ties with Gulf nations

Editorial

The nearly two-hour visit of UAE President and Ruler of Abu Dhabi Sheikh Mohamed bin Zayed Al Nahyan (MbZ) to Delhi on Monday, with only one meeting with Prime Minister Narendra Modi, ended with a number of far-reaching outcomes. The UAB is India's third- largest trading partner, its second biggest export destination, seventh biggest foreign investor, and concluded its first bilateral trade agreement with India in 2022. The agreements on Monday fo cused on the economic partnership - a commitment to double bilateral trade to $200 billion, an LNG deal for $3 billion and UAE investment in Gujarat. However, the major announcement was the intention to conclude a framework agree- ment for an India-UAE "Strategic Defence partnership", the first of its kind. Details are still to be revealed. However, it is clear that West Asia and South Asia will be watching closely given the complicated security environment in both regions. MbZ's sudden India visit came amidst heightened tensions between the UAE and the Kingdom of Saudi Arabia. Both countries were once a part of the same military coalition against the Houthi uprising in 2014. Their power tussle has also intensified over forces in Sudan, and the lack of communication between Mbz and Saudi leader Mohammed Bin Salman (MbS) is now be ing called the Gulf region's new "cold war". In addition, protests in Iran and the U.S.'s threats to intervene as well as the tenuous Gaza ceasefire and U.S. President Donald Trump's plans for a Board of Peace have led to concerns about internal and external instability. Israel's bombing in Qatar in September 2025, that led the Saudi government to rush a "mutual defence pact" with Pakistan, and reported negotiations of including Türkiye in the pact, portend a more complex and unstable region, with repercussions for India.

The announcement of the UAE-India negotiations for a defence agreement is being read by some as a possible military front to counter other regional alignments. Foreign Secretary Vikram Misri attempted to downplay concerns, holding that the treaty was not about India's involvement in "a hypothetical future scenario in the region". Even so, the government must keep in mind ties not only with the UAE but also other important Gulf region countries, where nearly 10 million Indians reside. The GCC-area is a major energy source, especially as U.S. and EU sanctions have curtailed all of India's other important sources. India's cross-regional connectivity plans through Iran's Chabahar port, the International North South Transport Corridor and the India-Middle East-Europe Economic Corridor have been imperilled due to all the tensions as their future depends on cooperation with all players there. With important relationships in the region, and so many faultlines within it, India has little option but to tread lightly.

दैनिक भास्कर

Date: 21-01-26

नोबेल पुरस्कार दबाव से नहीं पाए जा सकते हैं

संपादकीय

ट्रम्प ने नॉर्वे के पीएम को लिखते हुए कहा कि आपके देश ने मुझे आठ से ज्यादा युद्ध बंद कराने के बाद भी नोबेल शांति पुरस्कार नहीं दिया, इसलिए अब शांति के प्रति मेरी जिम्मेदारी नहीं रही। अगर राष्ट्रपति के इस कुतर्क को अमेरिकी समाज ने तत्काल खारिज नहीं किया तो उसके सामूहिक विवेक और नैतिकता पर प्रश्न चिह्न उठेंगे। अच्छे साध्य के लिए साधन भी पवित्र होने चाहिए। ईरान पर बम गिराकर युद्ध रुकवाना शांति नहीं, मोहल्ले के दादा द्वारा दो पड़ोसियों को धमकाकर लड़ाई न करवाना माना गया है । फिर युद्ध रोकने में किसी व्यक्ति की भूमिका उसी व्यक्ति के दावे से साबित नहीं होती। नोबेल जैसा सम्मानित पुरस्कार भी बाव से नहीं पाया जाता। ट्रम्प भूल रहे हैं कि इतने छिछले स्तर तक आने के बाद अब अगर उन्हें नोबेल समिति पुरस्कार देती भी है तो इससे ट्रम्प की गरिमा तो नहीं बढ़ेगी, इस पुरस्कार की घट जाएगी। ट्रम्प का धमकी भरा कुतर्क है कि अब वे अमेरिकी हित और औचित्य ही देखेंगे। ग्रीनलैंड पर कब्जा अमेरिकी हित तो हो सकता है, लेकिन यह उचित और नैतिक कतई नहीं है। टैरिफ का विकाशील देशों के सिर पर बंदूक रखकर या उनके यहां सेना भेजकर खुद को शांति के मसीहा के रूप में मनवाना क्या स्वयं अमेरिकी जनता के सामूहिक विवेक को स्वीकार्य होगा? स्वार्थ सिद्धि न होने पर अगर दुनिया के सबसे ताकतवर देश का मुखिया ही अशांति को जन्म दे तो अमेरिकी समाज को उसे सबक सिखाना होगा। आगामी मिड-टर्म चुनाव इसका उपयुक्त समय हो सकता है।

Date: 21-01-26

'गैंग्स्टर साम्राज्यवाद' के विरोध में दुनिया एक हो

जयती घोष, (मैसाचुसेट्स एमहर्स्ट यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर)

ट्रम्प की लेन-देन आधारित प्रभाव क्षेत्रों वाली भू-राजनीतिक और वैश्विक आर्थिक सोच ऊपर से जितनी बेतरतीब दिखती है, वैसी वह है नहीं। ध्यान से देखें तो आपको उनकी सोच के पीछे स्पष्ट पैटर्न नजर आ सकते हैं। इसकी साफ झलक मादुरो के अपहरण और वेनेजुएला के तेल भंडारों पर नियंत्रण हासिल करने के लिए वहां एक कठपुतली सरकार स्थापित करने की कोशिशों में दिखती है। ट्रम्प के 'डोनरो डॉक्ट्रिन' के केंद्र में यह विश्वास है कि अमेरिका अपने स्वघोषित 'बैकयार्ड' में बेधड़क होकर जो चाहे कर सकता है। इससे दुनिया में यह संकेत जाता है कि दूसरी अन्य महाशक्तियां विशेष रूप से चीन भी अपने क्षेत्र में ऐसा कर सकता है। अमेरिका अपने लिए यह अधिकार भी सुरक्षित रखता है कि वह जहां चाहे अपने रणनीतिक हितों को आगे बढ़ाए जिसमें ग्रीनलैंड भी शामिल है।

ट्रम्प के इस रवैये को भारतीय अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक ने सटीक शब्दों में 'गैंग्स्टर साम्राज्यवाद' कहा है। यह पूंजीवाद की औपनिवेशिक जड़ों की याद दिलाता है, जब लोगों और राज्यों के बीच के रिश्ते उनकी ताकत के आधार पर तय होते थे। इससे जुड़े गहरे नैतिक और वैधानिक सवालों को एक क्षण के लिए अलग रख दें, तब भी मूल प्रश्न बना रहता है कि क्या यह रणनीति वास्तव में काम कर सकती है? क्या दुनिया को बड़ी शक्तियों के बीच बांट देना खुद पूंजीवाद की स्थिरता और गतिशीलता के लिए अच्छा है, जबकि वैश्विक अर्थव्यवस्था पहले से कहीं अधिक अस्थिर और दिशाहीन दिखाई दे रही है ?

इतिहास के सबक तो हमें यही बताते हैं कि इसका उत्तर स्पष्ट रूप से 'नहीं' है। पिछली दो सदियों में पूंजीवाद कभी प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों के बीच तीखे टकराव के दौर से गुजरा है तो कभी ऐसे कालखंडों से जब एकमात्र प्रभुत्वशाली महाशक्ति नियम बनाने वाली और उन्हें लागू करने वाली दोनों की भूमिका में रही है । उन्नीसवीं सदी में यह भूमिका यूके ने निभाई थी, जिसने अपने यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों से कहीं बड़ा औपनिवेशिक साम्राज्य खड़ा किया था। बीसवीं सदी के मध्य से यह स्थान मुख्यतः अमेरिका के पास रहा है।

ट्रम्प की विदेश नीति की बुनियाद इस धारणा पर टिकी है कि जिस अमेरिकी नेतृत्व वाली वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने कभी अमेरिकी पूंजी के हित साधे थे, उसके लाभ अब चीन जैसी शक्तियों के उभार के साथ घट चुके हैं। और इसका इलाज यह है कि सैन्य- वर्चस्व और आर्थिक ताकत के बल पर उन क्षेत्रों में संसाधनों और बाजारों पर नियंत्रण स्थापित किया जाए, जिन्हें वे अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र के रूप में देखते हैं। इसका अर्थ है अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के दिखावे तक को त्याग देना, लोकतंत्र और मानवाधिकारों के नाम पर ओढ़ी गई शालीनता को ताक पर रख देना और खुलेआम उस पुराने सिद्धांत को अपनाना, जिसमें ताकत ही अधिकार बन जाती है और जिसमें संसाधनों की लूट को हर लिहाज से जायज ठहराया जाता है ।

लेकिन यह रणनीति जहां अमेरिकी मजदूरों और छोटे कारोबारों के लिए विनाशकारी है, वहीं यह बड़ी अमेरिकी कंपनियों के हितों को भी कमजोर करती है। आर्थिक संसाधन अलग-अलग प्रभाव क्षेत्रों में बंद नहीं रहते। बाजार एक-दूसरे में गुंथे होते हैं। अमेरिकी कॉर्पोरेट के कुछ हिस्सों को भले इससे लाभ हो- जैसे कि सैन्य-औद्योगिक कॉम्प्लेक्स जिसने यूक्रेन और मध्य पूर्व के युद्धों से भारी मुनाफा कमाया है- लेकिन अन्य हितों को नुकसान

होगा। वे बहुराष्ट्रीय कंपनियां खासी प्रभावित होंगी, जो भौगोलिक रूप से फैली आपूर्ति श्रृंखलाओं पर निर्भर हैं। जो वित्तीय संस्थान निर्बाध कैपिटल फ्लो के आदी हैं, उनके अवसर सिमटेंगे। और बिग टेक कंपनियां - जिनका पूरा कारोबार ही दुनिया भर से डेटा तक पहुंच पर टिका है- खुद को प्रमुख बाजारों से बाहर पाएंगी।

Date: 21-01-26

हिंदी और उर्दू सगी बहनें हैं, इन्हें सौतेलेपन से बचाएं

प्रियदर्शन, (लेखक और पत्रकार)

बीते हफ्ते जयपुर साहित्य समारोह के दौरान जावेद अख्तर ने उर्दू और भाषाओं की राजनीति पर बात करते हुए ठीक ही कहा कि भाषाओं को धार्मिक आधार पर बांटा नहीं जा सकता। बताया जा रहा है कि उन्होंने यह भी कहा कि उर्दू की वजह से भारत का बंटवारा हुआ और पाकिस्तान बना। शायद यह सरलीकरण है, क्योंकि इस बात के बावजूद कि उन दिनों साम्प्रदायिक राजनीति परवान चढ़ रही थी, हर तरह की विभेदकारी सम्भावनाओं के इस्तेमाल की कोशिश जारी थी और उर्दू के बड़े शायर इकबाल भी उन लोगों में थे, जो पाकिस्तान के विचार के जनक बताए जाते हैं- भारत-विभाजन एक जटिल राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम था। डॉ. राम मनोहर लोहिया ने अबुल कलाम आजाद की किताब की भूमिका लिखते हुए 'भारत विभाजन के गुनहगार' नाम की जो किताब तैयार कर दी थी, उसमें आठ गुनहगारों का उल्लेख है, लेकिन उनमें उर्दू नहीं है। शायद जावेद अख्तर यह कहना चाह रहे हों कि हिंदी-उर्दू को बांटने वाली राजनीति भी एक वजह है, जो विभाजन की तरफ देश को ले गई।

मगर धर्मों के आधार पर भाषा को न बांटने के बिल्कुल उचित खयाल को क्या हम उर्दू और हिंदी के संदर्भ में अमल में आता देख रहे हैं? वस्तुतः हिंदी और उर्दू बिल्कुल सगी बहनों जैसी हैं, बल्कि उर्दू को कभी हिंदवी और हिंदी भी कहते रहे और हिंदी को भी हिंदुस्तानी बनाने की कोशिश हुई, लेकिन हमारे अवचेतन में ये दो अलग-अलग पहचानों की भाषा के रूप में विकसित होती चली गई हैं। इस बात को कुछ लोकप्रिय - शास्त्रीय दोनों तरह के उदाहरणों से समझा जा सकता है। मिसाल के तौर पर हिंदी फिल्मों के संवादों को देखें। इन फिल्मों में अगर राजा मुसलमान हुआ तो उसे बादशाह कहने का चलन है और अगर हिंदू हुआ तो उसे सम्राट कहने का। अगर बादशाह अकबर संवाद बोल रहे हैं तो उर्दूनिष्ठ हिंदी में बोलते मिलेंगे और अगर महाराणा प्रताप संवाद बोल रहे हैं तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी में बोलते मिलेंगे। जबकि सच यह है कि उस मध्यकाल में न अकबर उर्दू बोलते थे और

न राणा प्रताप वैसी हिंदी बोलते थे, जिसमें वे सिनेमा में बोलते दिखाई पड़ते हैं। जाहिर है, हमारे अवचेतन में उर्दू मुसलमानों की और हिंदी हिंदुओं की भाषा होती चली गई है।

इस हादसे का ज्यादा अफसोसनाक प्रमाण विष्णु खरे की कविता 'गुंग महल' है, जिसमें ईश्वर की भाषा के सवाल पर बहस कर रहे पंडित जब संस्कृत के पक्ष में तर्क देते हैं तो तत्समनिष्ठ हिंदी में देते हैं। और जब मौलवी अरबी के अल्लाह की जुबान होने का दावा करते हैं तो उर्दू में करते हैं। क्या विष्णु खरे जैसे प्रखर कवि को भी एहसास नहीं था कि जाने-अनजाने वे भाषा में डाल दी गई साम्प्रदायिकता के शिकार हो रहे हैं?

हालांकि यह सच है कि हिंदी की शुद्धता के नाम पर जो लोग अरबी-फारसी शब्दों से परहेज करने का आग्रह करते हैं, वे दरअसल हिंदी की ऐतिहासिकता और स्वाभाविकता दोनों के साथ अन्याय करते हैं। क्योंकि हम जो भाषा इस्तेमाल करते हैं, वह अपने मूल में उर्दू के बेहद करीब है और वही हमारी स्वाभाविक जुबान बनती है। हम 'घर' बनाते हैं, 'दरवाजे' खोलते हैं, 'दीवारों' को पहचानते हैं और 'बाजार' जाकर 'खरीददारी करते हैं। 'गृह' में रहते हुए 'द्वार' खोलकर 'भित्तियों' को पहचानते और 'हाट' जाकर क्रय-विक्रय' नहीं करते !

जो लोग लेकिन ऐसी भाषा की वकालत करते हैं, वे दरअसल हिंदी-उर्दू को धार्मिक आधारों पर बांटने की ही कोशिश करते हैं, जैसी कोशिश वे अन्य स्तरों पर भी समाज को बांटने की करते रहते हैं। तो जावेद अख्तर की बात से सहमत होते हुए भी हमें भाषा के साम्प्रदायिकीकरण के खतरे से बचना होगा, जो हमारे अवचेतन में चला आया है। भाषाओं को बचाना है तो आपसदारी से बचाना होगा, दीवारें खड़ी करके, उनके रास्ते रोक कर नहीं।

दैनिक जागरण

Date: 21-01-26

ट्रंप के रवैये से त्रस्त दुनिया

हर्ष वी. पंत, (लेखक आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में उपाध्यक्ष हैं)

अमेरिका राष्ट्रपति के रूप में डोनाल्ड ट्रंप के दुसरे कार्यकाल को एक साल बीत गया है। इस एक वर्ष के दौरान उन्होंने अपनी नाटकीय नीतियों से वैश्विक ढांचे की दशा-दिशा ही बदल दी है। यहां तक कि अमेरिका के पारंपरिक सहयोगी भी उनके अप्रत्याशित रवैये से कुछ परेशान हो चुके हैं। महीनों तक नोबेल शांति पुरस्कार के लिए खुद ही अपनी पैरवी करते रहे ट्रंप ने नव वर्ष की शुरुआत में ही नए तेवर अपना लिए । तीन जनवरी को वेनेजुएला में महज कुछ घंटों के दौरान ही सत्ता पलट करने में सफल रहे ट्रंप उसके बाद ईरान और ग्रीनलैंड को लेकर आक्रामकता दिखाने लगे। बीते दिनों ईरान में अनियंत्रित हुए विरोध- प्रदर्शनों के निर्ममता से दमन को लेकर भी उन्होंने चेताया कि अगर सत्ता ने अपना शिकंजा और कड़ा किया तो वे कोई कड़ा कदम उठाने से संकोच नहीं करेंगे। जब हजारों की तादाद में प्रदर्शनकारियों के मारे जाने की खबरें आईं तो ट्रंप ने कहा कि अमेरिका कार्रवाई के लिए पूरी तरह तैयार है और ईरान को इसकी भारी कीमत चुकानी होगी। इसके लिए उन्होंने पिछले साल ईरान के परमाणु ठिकानों को निशाना बनाने का उदाहरण भी सामने रखा। ईरानी सत्ता प्रतिष्ठान ने प्रदर्शनकारियों की हत्या और गिरफ्तार लोगों को फांसी दिए जाने जैसे आरोपों से इन्कार किया है और ट्रंप में भी अपने निजी सूत्रों का हवाला दिया कि ऐसा कुछ नहीं हो रहा है। यह बात अलग है कि ईरान में जिन लोगों एवं संस्थाओं पर प्रदर्शनकारियों के दमन और विदेशी बाजार में तेल की कालाबाजारी के आरोप हैं, उन पर ट्रंप प्रशासन ने नए सिरे से और कड़े प्रतिबंध लगाए हैं। इतना ही नहीं, ईरान के साथ व्यापार करने वाले देशों पर अतिरिक्त 25 प्रतिशत टैरिफ लगाकर भी उन्होंने ईरान और उसके सहयोगियों को कड़ा संदेश दिया।

ईरान से इतर ग्रीनलैंड का मामला ट्रंप के नजरिये से कहीं अधिक महत्वपूर्ण दिख रहा है। ऐसा इसलिए, क्योंकि इसमें उन्हीं देशों का अमेरिका के साथ टकराव बढ़ता दिख रहा है, जो द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही अमेरिका के घनिष्ठ मित्र रहे हैं। ट्रंप इन देशों के साथ उसी आत्मीयता को तार तार कर रहे हैं। उन्होंने एआइ जनित तस्वीर के माध्यम से पोस्ट किया कि 2026 से ग्रीनलैंड अमेरिका का हिस्सा बन गया है। वैसे ग्रीनलैंड के प्रति ट्रंप का यह नजरिया कोई नया नहीं है। अपने पहले कार्यकाल में भी ग्रीनलैंड का मुद्दा उनकी "राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति" का एक केंद्र बिंदु रहा है। इसे अक्सर "डोनरो डोक्ट्रिन" के रूप में प्रस्तुत किया गया।

वे आर्कटिक क्षेत्र को एक महत्वपूर्ण रणनीतिक मोर्चे के रूप में देखते हैं, जिसे किसी भी तरह अमेरिकी नियंत्रण में लाना आवश्यक है। ट्रंप प्रशासन शक्ति प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से भी अपने इस रुख को सही ठहराता है। ट्रंप बार- बार दोहराते रहे हैं कि ग्रीनलैंड रूसी और चीनी जहाजों से घिरा हुआ है और उसके पास स्वयं पर कब्जे के किसी प्रयास का प्रतिरोध करने की सैन्य क्षमता नहीं है। अमेरिका की सुरक्षा के लिए ट्रंप जिस महत्वाकांक्षी 'गोल्डन डोम' परियोजना पर काम कर रहे हैं, उसे सिरे चढ़ाने के लिए भी ग्रीनलैंड की जमीन की जरूरत पड़ेगी।

सामरिक बढ़त के अलावा संसाधनों की दृष्टि से भी ग्रीनलैंड का बहुत महत्व है। यह द्वीप उन दुर्लभ खनिजों और यूरेनियम के अकूत भंडारों का खजाना है, जो पर्यावरण अनुकूलन की दिशा में आगे बढ़ने के लिए अहम उपकरणों से लेकर उन्नत रक्षा साजोसामान बनाने में काम आते हैं। हालांकि ट्रंप इसका उतना बखान नहीं करते, लेकिन ग्रीनलैंड में एक विशेष दूत की नियुक्ति और अमेरिकी संसद में 'मेक ग्रीनलैंड ग्रेट अगेन' एक्ट को बढ़ावा देना तो यही संकेत करता है कि इस द्वीप के संसाधनों के दोहन में उनकी गहरी रुचि है। यही कारण है कि ट्रंप ने ग्रीनलैंड के हर एक नागरिक को 10,000 से 100,000 डालर तक देने का प्रस्ताव दिया कि वे डेनमार्क से अलग होकर अमेरिका के साथ जुड़ जाएं। हालांकि उनके इस प्रस्ताव को नागरिक मंचों से लेकर नीति-नियंताओं ने भी खारिज कर दिया है।

ग्रीनलैंड को लेकर ट्रंप के स्तर पर एक और महत्वपूर्ण बदलाव यह रहा कि 2025 में वे उसे यूरोपीय कमांड (ईयूकोम) की जगह उत्तरी कमांड (नार्थकोम) के अंतर्गत ले आए। इसके पीछे मुख्य विचार ग्रीनलैंड को यूरोप का एक हिस्सा मानने के बजाय उसे उत्तरी अमेरिका के रक्षा कवच के रूप में देखना था। देखा जाए तो ग्रीनलैंड भौगोलिक रूप से उत्तरी अमेरिका का हिस्सा है, लेकिन एक यूरोपीय देश से जुड़ा होने के कारण उसे अलग दृष्टि से देखा जाता था। जहां तक नार्थकोम की बात है तो इसका प्रमुख उद्देश्य अमेरिका और कनाडा की रक्षा सुनिश्चित करना है। ऐसे में ग्रीनलैंड को लेकर ट्रंप की इस नीति परिवर्तन ने यही संकेत दिया कि ग्रीनलैंड अब महज एक विदेशी सैन्य अड्डे से कहीं बढ़कर हैं और अमेरिकी सीमाओं की सुरक्षा में उसकी अपनी एक विशेष महत्ता है।

तमाम प्रयासों के बाद भी ट्रंप को ग्रीनलैंड से जुड़ी अपनी मंशा को पूरा करने के प्रयासों में अपेक्षित सफलता नहीं मिल रही है। यही कारण है कि वह अब सैन्य विकल्प आजमाने की धमकी भी दे रहे हैं। यूरोपीय और नाटो सहयोगियों में इसकी तीखी प्रतिक्रिया भी दिखी है। हालांकि इसे ट्रंप की सुविधाजनक हस्तक्षेपकारी नीति कहना अधिक उपयुक्त होगा, जिसमें अमेरिकी व्यापारिक एवं सामरिक हितों को साधने के लिए बल प्रयोग से संकोच नहीं। ऐसे में सहयोगी देशों से उनकी यही अपेक्षा है कि या तो अमेरिकी आकांक्षाओं के अनुरूप काम करें या फिर अमेरिका के सुरक्षा आवरण को गंवाने का जोखिम उठाने के लिए तैयार रहें। ट्रंप की यह विदेश नीति न केवल दुनिया के प्रति अमेरिका की पारंपरिक भूमिका के मूल सिद्धांतों को चुनौती दे रही है, बल्कि आधुनिक विश्व व्यवस्था से जुड़ी व्यापक मान्यताओं को भी झकझोर रही है। दूसरों को नसीहत देने वाला अमेरिका अब खुद ही उन स्थापित परंपराओं को दरकिनार कर रहा है, जिनकी पैरवी वह खुद करता रहा है। इस परिवर्तन के प्रभाव बहुत दूरगामी होंगे।

जनसत्ता

Date: 21-01-26

पारदर्शिता की खातिर

संपादकीय

निर्वाचन आयोग की ओर से मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण यानी एसआइआर के संदर्भ में एक सबसे अहम अपेक्षा यह रही है कि इसे पूरी तरह पारदर्शी होना चाहिए। कई तरह के विवादों के बीच विपक्षी दलों की ओर से उठाई गई एक प्रमुख मांग भी यही है। इस मसले पर निर्वाचन आयोग की यही दलील रही है कि मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण का उद्देश्य अपात्र लोगों को बाहर करना है। इसमें स्थान बदलने वाले लोगों से लेकर वैसे लोग भी शामिल होंगे, जिनकी मौत हो चुकी है। इस घोषित मकसद से किसी को आपत्ति नहीं होगी, लेकिन अलग-अलग राज्यों में मतदाता सूची से जितनी बड़ी तादाद में लोगों के नाम बाहर होने की खबरें आई हैं, उसे लेकर कई सवाल उठे हैं। इसकी जड़ में मुख्य कारण इस समूची प्रक्रिया में अपेक्षित पारदर्शिता सुनिश्चित नहीं किया जाना हो सकता है और इसीलिए आम नागरिकों के बीच तमाम आशंकाएं उभरी। अगर एसआइआर की प्रक्रिया को शुरू से आखिर तक पूरी तरह पारदर्शी बनाने की व्यवस्था की जाती, तो संभवतः अनावश्यक विवाद नहीं खड़े होते ।

अब सुप्रीम कोर्ट ने पश्चिम बंगाल में मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण के संदर्भ में यह स्पष्ट निर्देश दिया है कि इस समूची कवायद में तार्किक विसंगतियों की श्रेणी में रखें गए मतदाताओं का सत्यापन पूरी तरह पारदर्शी ढंग से हो और इससे लोगों को अनावश्यक तनाव तथा असुविधा न हो। गौरतलब है कि पुनरीक्षण की प्रक्रिया के दौरान ऐसी तमाम शिकायतें सामने आई कि मनमाने तरीके से नागरिकों के नाम बाहर किए गए। कई जगहों पर लोगों को समय पर इसकी जानकारी भी नहीं हुई और उनका नाम मतदाता सूची से हट गया। जाहिर है, निर्वाचन आयोग की ओर से यह प्रक्रिया जिस स्तर पर चलाई गई, उसमें मतदाता सूची से बाहर होने वाले लोगों को सूचित करने और उन्हें अवसर देने को लेकर सवाल उठे। पश्चिम बंगाल में भी चुनाव आयोग ने विशेष गहन पुनरीक्षण के दौरान नाम, उपनाम, आयु में गड़बड़ी आदि की वजह से करीब एक करोड़ पच्चीस लाख मतदाताओं को तार्किक विसंगति नोटिस जारी किया था। इस संदर्भ में शीर्ष अदालत ने आयोग को निर्देश दिया कि वह किसी भी तरह की गड़बड़ी वाली मतदाता सूची को ग्राम पंचायत भवन, प्रखंड कार्यालय और वार्ड कार्यालय में सार्वजनिक तौर पर लगाए, ताकि लोगों को पता चल सके।

सवाल है कि मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण को पूरी तरह पारदर्शी बनाने का जो काम निर्वाचन आयोग को अपनी प्रक्रिया में प्राथमिक स्तर पर खुद ही अनिवार्य रूप से शामिल करना चाहिए था, उसके बारे में सुप्रीम कोर्ट को निर्देश देने की जरूरत क्यों पड़ रही है। तार्किक विसंगति के दायरे में आए सभी नामों को सार्वजनिक करने के अलावा मतदाता सूची में नाम होने के लिए जरूरी दस्तावेजों में आधार कार्ड शामिल करने को लेकर भी सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया था। सच यह है कि बिहार सहित देश के जिन राज्यों में मतदाता सूची को दुरुस्त

करने की प्रक्रिया संचालित की गई, वहां सबसे अहम सवाल पारदर्शिता को लेकर ही उठे। इससे किसी को भी असहमति नहीं होगी कि चुनाव प्रक्रिया में कोई भी अवैध रूप से हिस्सा न ले और सिर्फ पात्र लोगों को ही मतदान का अधिकार मिले। मगर यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि सभी पात्र लोगों को खुद को सही साबित करने के लिए जरूरी अवसर और सुविधा मिले, ताकि वह मतदान के लोकतांत्रिक अधिकार से वंचित न हो।

Date: 21-01-26

ग्रीनलैंड पर खुलते नए मोर्चे

पुष्परंजन

एक नए सर्वेक्षण के अनुसार, जर्मनी के ज्यादातर लोग मानते हैं कि अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की नीतियां 'नाटो' को खतरे में डाल रही हैं। 'जेडडीएफ पालिटबैरोमीटर' सर्वे में शामिल लगभग 78 फीसद लोगों ने कहा कि ट्रंप का रवैया गठबंधन के लिए खतरा है, जबकि 18 फीसद लोग इससे सहमत नहीं थे। बाकी लोगों ने कहा कि वे पक्का नहीं कह सकते। यह सर्वे ऐसे समय में आया है, जब ट्रंप ग्रीनलैंड पर अमेरिका के दावों पर जोर दे रहे हैं, जो संसाधन से भरपूर आर्कटिक द्वीप है। नाटो सदस्य डेनमार्क का हिस्सा है ग्रीनलैंड, लेकिन उसे काफी आजादी मिली हुई है। इस मसले पर डेनमार्क की प्रधानमंत्री मेटे फ्रेडरिकसेन का कहना है कि अगर अमेरिका ग्रीनलैंड पर हमला करता है, तो लंबे समय से चला आ रहा गठबंधन खत्म हो जाएगा। यह सवाल भी पूछा गया कि अगर अमेरिका आर्थिक संसाधनों को हासिल करने के लिए अंतरराष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करते हुए दूसरे देशों में सैन्य हस्तक्षेप करता है, तो यूरोपीय संघ को क्या प्रतिक्रिया देनी चाहिए, तो 69 फीसद लोगों के स्पष्ट बहुमत ने कहा कि यूरोपीय संघ को ऐसे कार्मों का विरोध करना चाहिए। लगभग 22 फीसद लोगों का मानना है कि ब्रसेल्स को इससे दूर रहना चाहिए, जबकि सिर्फ पांच फीसद लोगों ने कहा कि यूरोपीय संघ को अमेरिका का साथ देना चाहिए।

क्षेत्रफल के हिसाब से ग्रीनलैंड वृहदाकार है। हालांकि अमेरिका, रूस, कनाडा और चीन काफी बड़े हैं, लेकिन ग्रीनलैंड, जर्मनी से लगभग छह गुना बड़ा है। भारत को ग्रीनलैंड से डेढ़ गुना बड़ा माना जा सकता है, लेकिन मर्केटर प्रोजेक्शन वाले मानचित्रों पर ध्रुवों के करीब होने के कारण ग्रीनलैंड अक्सर भारत से बहुत बड़ा दिखता है। असल में, ग्रीनलैंड पूरे यूरोपीय संघ के आधे से ज्यादा आकार का है और दुनिया का सबसे बड़ा द्वीप है, जबकि आस्ट्रेलिया, जिसे यह ताज मिलना चाहिए था, उसे एक महाद्वीप माना जाता है। ग्रीनलैंड के साथ भारत का रिश्ता मुख्य रूप से डेनमार्क के साथ उसकी मजबूत 'ग्रीन स्ट्रेटेजिक पार्टनरशिप' यानी हरित रणनीतिक साझेदारी के जरिए आगे बढ़ता है, जो पर्यावरण, अक्षय ऊर्जा और तकनीक पर केंद्रित है। आर्कटिक इलाके में भारत स्थिरता और शांतिपूर्ण बातचीत का समर्थन करता है।

सिर्फ 56,000 निवासियों के साथ ग्रीनलैंड धरती पर सबसे कम आबादी वाला इलाका माना गया है, जहां प्रति वर्ग किमी में लगभग 0. 14 लोग रहते हैं। इसकी वजह ग्रीनलैंड की भौगोलिक स्थिति है। इस देश का 80 फीसद हिस्सा लगभग 30 लाख साल पहले बनी बर्फ की चादर से ढका हुआ है, जिससे बड़े इलाके रहने लायक नहीं हैं। 65 फीसद से ज्यादा आबादी ग्रीनलैंड की पांच नगरों में रहती है। नुक ग्रीनलैंड की राजधानी है। वहां केवल 19,905 लोग रहते हैं। सिसिमियुट (5,485), इलुलिसैट (5,087), काकोर्तोक (3,069) और आसियात में केवल 2,992 लोग रहते हैं। भारत के छोटे से छोटे कस्बे में इनसे कई गुना ज्यादा आबादी मिलेगी।

ग्रीनलैंड की रक्षा की जिम्मेदारी डेनमार्क की है। हालांकि, ग्रीनलैंड को खरीदने या उस पर हमला करने की हालिया धमकियां अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के प्रशासन से जुड़ी हैं, लेकिन वह डेनिश क्षेत्र उससे कहीं ज्यादा समय से अमेरिकी हितों के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। तत्कालीन अमेरिकी विदेश मंत्री विलियम सेवर्ड ने 1867 में ही ग्रीनलैंड को अपने साथ मिलाने की बात की थी। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका ने यह सुनिश्चित करने के लिए ग्रीनलैंड के सामरिक हिस्सों पर कब्जा कर लिया था, ताकि यह नाजी जर्मनी के हाथों में न जाए। अमेरिका वर्तमान में उत्तर-पश्चिमी ग्रीनलैंड के 'पिटुफिक स्पेस बेस' का संचालन करता है, जिसे 1951 में अमेरिका और डेनमार्क द्वारा ग्रीनलैंड रक्षा संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद बनाया गया था। साल 2023 में 'बुले एअर बेस' का नाम बदलकर 'पिटुफिक स्पेस बेस' कर दिया गया था।

चीन ने 2018 में आर्कटिक क्षेत्र में अपनी पकड़ बनाने के प्रयास में खुद को 'निकट - आर्कटिक राज्य' घोषित किया। आर्कटिक सर्कल भूमध्यरेखा से उत्तर में लगभग 66.5 डिग्री अक्षांश पर स्थित है, जहां गर्मी के दिनों में चौबीस घंटे सूरज क्षितिज से नीचे नहीं डूबता और सर्दियों में चौबीस घंटे उदय नहीं होता। यह रेखा आठ देशों कनाडा, डेनमार्क (ग्रीनलैंड), फिनलैंड, आइसलैंड, नार्वे, रूस, स्वीडन और अमेरिका (अलास्का) के हिस्सों से होकर गुजरती है। इसके उत्तर का क्षेत्र 'आर्कटिक' कहलाता है।

वर्ष 2025 में डेनमार्क और ग्रीनलैंड के भूवैज्ञानिक सर्वे में पाया गया कि द्वीप की बर्फ की चादर लगातार उनतीसर्वे साल भी सिकुड़ गई है। 'ग्रीनलैंड आइस शीट' ने हर साल लगभग 140 बिलियन टन बर्फ खो दी है। आर्कटिक बर्फ का पतला होना, इस इलाके में बढ़ती दिलचस्पी का एक और मुख्य कारण माना जाता है, खासकर अमेरिका की ऐसा लगता है कि यह अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक उत्तर-पश्चिम गलियारा बनाएगा, जिसका मतलब यह हो सकता है कि अमेरिका को ग्रीनलैंड के खनिज संसाधनों तक पहुंच के लिए रूस, चीन और दूसरे देशों के साथ मुकाबला करना पड़ेगा। ग्रीनलैंड में यूरोपीय संघ यूनियन द्वारा जरूरी माने जाने वाले चौंतीस कच्चे माल में से कम से कम पच्चीस मौजूद हैं। हालांकि, इस इलाके में काफी मात्रा में लौह तत्त्व, ग्रेफाइट, टंगस्टन, पैलेडियम, वैनेडियम, जिंक, सोना, यूरेनियम, तांया और तेल है, लेकिन सीमित बुनियादी ढांचे के कारण इनमें से ज्यादातर को निकालना मुश्किल है। ग्रीनलैंड के 'दुर्लभ खनिज' सबसे ज्यादा मांग वाली चीज है, जिस पर अमेरिका की गिद्ध दृष्टि लगी है ।

हाल ही में आठ यूरोपीय देशों ने ग्रीनलैंड में कुछ सैनिक भेजने की हिम्मत की थी, पर ट्रंप द्वारा दस फीसद शुल्क दर लगाने की धमकी के बाद गुस्सा और बढ़ा है। ग्रीनलैंड समर्थक यूरोपीय देशों पर नए शुल्क लगाने की ट्रंप की धमकी के जवाब में यूरोपीय संघ अपने सबसे सख्त व्यापार नियम 'बजूका' पर विचार करने पर मजबूर हो गए हैं। यह कदम अमेरिकी सामानों और कंपनियों को यूरोपीय संघ के बाजार में पहुंच से रोक सकता है। हालांकि नाटो में पहले भी अमेरिका का विरोध होता रहा है, मगर बाद में 'सुलह' भी हो जाती है। दरअसल, अमेरिका में इस साल मध्यावधि चुनाव और घरेलू मोर्चे पर ट्रंप की विफलता ने सारा गड्डमड्ड कर डाला है। उससे सबका ध्यान बंटे, इस वजह से ट्रंप कभी वेनेजुएला, तो कभी ईरान, गाजा, यूक्रेन के मुद्दे को पहाड़ की तरह उठा लेते हैं। ग्रीनलैंड भी ऐसे ही अभियान का हिस्सा है। हालांकि, इसका विरोध अमेरिका में ही शुरू हो चुका है।

अमेरिकी सीनेटरों ने राष्ट्रपति ट्रंप के आर्कटिक आइलैंड ग्रीनलैंड को अमेरिकी नियंत्रण में लाने की योजना की आलोचना की। अलास्का की रिपब्लिकन सीनेटर लिसा मुर्कोव्स्की ने अपनी डेमोक्रेटिक साथी न्यू हैम्पशायर की जीन शाहीन के साथ मिलकर एक विधेयक पेश किया है, जो किसी दूसरे नाटो सदस्य देश के इलाके पर एकतरफा कब्जा करने पर रोक लगाएगा । मुकव्स्की ने कहा कि यह अब तक का सबसे सफल रक्षा समझौता है, जिसे ट्रंप बाधित कर रहे हैं। यो, 'यूनिटी प्रोटेक्शन बिल' सीनेट और उसके बाद प्रतिनिधि सभा में बहुमत के साथ पास होने की उम्मीद कम है। बहुमत का मतलब ट्रंप के विरुद्ध खुली बगावत होगा। जल्दी ही डेनमार्क के विदेश मंत्री लार्स लोके रासमुसेन वाशिंगटन में अमेरिकी उपराष्ट्रपति जेडी वेंस और विदेशमंत्री मार्को रुबियो से ग्रीनलैंड पर अमेरिकी दावों पर बात करने के लिए मिलेंगे। लेकिन लगता नहीं कि ट्रंप इतनी जल्द पीछे हटेंगे। ग्रीनलैंड अमेरिकी कूटनीति का 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' बन चुका है !

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 21-01-26

भारत-यूएई औचक वार्ता का मतलब

कंवल सिब्बल, (पूर्व विदेश सचिव)

सोमवार की देर शाम संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) के राष्ट्रपति शेख मोहम्मद बिन जायद अल नाहयान का भारत आना अप्रत्याशित था। भले ही, यह उनकी अब तक की पांचवीं यात्रा थी और बतौर राष्ट्रपति तीसरी, लेकिन इस दौरे की जानकारी भारतीय विदेश मंत्रालय ने महज एक दिन पहले साझा की। फिर, उनका पूरा दौरा

बमुश्किल दो घंटे का था। वह तकरीबन सवा चार बजे पालम हवाई अड्डे पर उतरे और सवा छह बजे अपने देश के लिए रवाना हो गए।

बेहद संक्षिप्त होने के बावजूद इस यात्रा के दीर्घकालिक निहितार्थ हैं। पहला, इसकी पहल संयुक्त अरब अमीरात की तरफ से की गई थी, जिसका अर्थ है कि राष्ट्रपति जल्द कुछ ठोस बातचीत करना चाहते थे । यह 'मसला' पश्चिम एशिया से जुड़ा भी हो सकता है, क्योंकि अभी इस खित्ते में उथल-पुथल मची हुई है। करीब तीन हफ्ते पहले यमन में सऊदी अरब के सैनिकों ने मुकल्ला शहर पर बमबारी इसलिए की थी, क्योंकि वहाँ कथित तौर पर यूएई से अलगाववादी गुट के लिए हथियारों की खेप आई थी। बेशक, दोनों देशों में यह कोई नई अदावत नहीं है, पर तीन महीने पहले सऊदी अरब व पाकिस्तान में रक्षा समझौता हुआ है और इसमें तुर्किये को भी शामिल करने की योजना है। ऐसे में, माना यही जा रहा है कि यूएई भी हमारे साथ ऐसा ही कोई रक्षा संबंध चाहता है, ताकि भारत इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण खिलाड़ी बन जाए और शक्ति का संतुलन बन सके।

नई दिल्ली इससे गाफिल नहीं है, इसलिए विदेश सचिव विक्रम मिसरी ने तत्काल साफ कर दिया कि नाहयान की यात्रा का गलत अर्थ नहीं निकाला जाए। सऊदी अरब को लेकर नई दिल्ली का रुख स्पष्ट और भारत वहां के समीकरण में एक के खिलाफ दूसरे को समर्थन देने की नीति नहीं अपनाएगा। यह उचित बवान है। वहां के तनाव में किसी एक का पक्ष लेना कूटनीतिक तौर पर घातक साबित हो सकता है, क्योंकि सऊदी अरब के साथ हमारे रिश्ते अच्छे हैं।

फिर भी, नाहयान की यात्रा से निकल रहे इस संदेश से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत में यूएई की रक्षा हिस्सेदारी बढ़ गई है। संयुक्त बयान में कहा गया है कि निरंतर और सुदृढ़ द्विपक्षीय रक्षा व सुरक्षा सहयोग को व्यापक रणनीतिक साझेदारी के एक मुख्य स्तंभ के रूप में दोनों नेताओं (प्रधानमंत्री मोदी और राष्ट्रपति नाहयान) ने स्वीकार किया है। इसमें यह बात भी सामने आई है कि दोनों देशों की थल सेना, नौसेना और वायु सेना से संबंधित 'सर्विस चीफ' और कमांडरों ने हाल में एक-दूसरे देश का दौरा किया है। हम उसकी रक्षा परियोजना में सहयोग देना चाहते हैं और यूएई भी चाहता है कि अमेरिका पर उसकी निर्भरता घटे। सुखद बात है कि सोमवार को दोनों देशों के बीच रणनीतिक रक्षा साझेदारी के लिए एक ढांचागत समझौते को अंतिम रूप देने की दिशा में आगे बढ़ने के आशय पत्र पर हस्ताक्षर किए गए। इससे पता चलता है कि 'ऑपरेशन सिंदूर' को लेकर पाकिस्तान गाल बजा रहा है और असलियत की जानकारी सबको है।

इस यात्रा का एक मकसद 'तेल अर्थव्यवस्था' से इतर की व्यवस्था से भी जुड़ा है। यूएई ने अब अपना रुख बदल लिया है। उसने समझ लिया है कि तेल का 'खेल' जब खत्म हो जाएगा, तब व्यापार ही काम आएगा, वह भी भविष्योन्मुखी क्षेत्रों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार, विशेष रूप से एआई और उभरती प्रौद्योगिकियों से जुड़े क्षेत्रों में सहयोग को मजबूत बनाने की मंशा इसीलिए जताई गई है। समझौते के मुताबिक, अमीरात की कंपनी भारतीय कंपनी के साथ मिलकर एक सुपर कंप्यूटिंग क्लस्टर की स्थापना में मदद करेगी। अमीरात उभरते क्षेत्रों में निवेश करने को इच्छुक है और उसके पास काफी पूंजी भी है। उसका यह रुख हमारे हित में है।

इसी तरह, 'फर्स्ट अबू धाबी बैंक' द्वारा गुजरात की 'गिफ्ट सिटी' में अपनी शाखा खोलने की अनुमति लेना भी उल्लेखनीय है, जिससे व्यापार और निवेश संबंधों को बढ़ावा मिलेगा। इससे आर्थिक गतिविधियों में इजाफा होगा और रुपये व दिरहम में लेन-देन बढ़ जाएगा। डीपी वर्ल्ड कंपनी ने भी गिफ्ट सिटी से अपने वैश्विक संचालन के लिए जहाजों के लीजिंग सहित तमाम गतिविधियां चलाने पर सहमति जताई है।

वास्तव में, भारत और संयुक्त अरब अमीरात का बढ़ता संबंध दोनों देशों को ही नहीं, कई क्षेत्रों को प्रभावित करेगा। यहां इस्लामी दुनिया की चर्चा लाजिमी है। गौरतलब है, दिसंबर 2025 के आखिरी हफ्ते में राष्ट्रपति नाहयान पाकिस्तान गए थे। उस यात्रा का मूल मकसद तो स्पष्ट नहीं हो सका था, लेकिन पाकिस्तान की ओर से यह जरूर कहा गया कि 'आपसी हितों से जुड़े क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर विचारों का आदान-प्रदान किया गया'। ऐसे में, यूएई राष्ट्रपति के भारत आने से पाकिस्तान के ऊपर दबाव पड़ा होगा। सऊदी अरब के साथ रक्षा समझौते के बाद इस्लामाबाद का 'महिमा- गान' अब बंद हो सकता है।

इससे कथित 'इस्लामिक नाटो' पर भी दबाव पड़ेगा। बेशक, तुर्किये के विदेश मंत्री हाकान फिदान ने स्पष्ट किया है कि सऊदी - पाकिस्तान रक्षा समझौते में उसे भी शामिल होने का न्योता मिला है, लेकिन उन्होंने अभी तक साफ नहीं किया है कि उनका देश इसमें शामिल हो रहा है? इसमें इसलिए भी शक अधिक है, क्योंकि सऊदी अरब और तुर्किये के रिश्ते तल्ख हैं। रियाद 'मुस्लिम ब्रदरहुड' के खिलाफ है, जबकि तुर्किये इसका समर्थन करता है। फिर ऑटोमन साम्राज्य की यादें भी दोनों के बीच कटुता बढ़ाती हैं। ऐसे में, 'इस्लामिक नाटो' कितना सफल हो सकेगा, यह अभी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

हां, फाइनेंशियल एक्शन टास्ट फोर्स' यानी एफएटीएफ को लेकर जो दावा किया जा रहा है कि भारत- अमीरात के गहराते रिश्ते पाकिस्तान को परेशान कर सकते हैं, गले नहीं उतरता । अमेरिका व पाकिस्तान में निकटता बढ़ी है, दोनों ने अभी-अभी आतंकवाद रोधी अभियान में अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए संयुक्त सैन्य अभ्यास भी किया है। इस रिश्ते से ट्रंप परिवार के अपने हित भी जुड़े हैं। ऐसे में, वह शायद ही पाकिस्तान के खिलाफ जाना चाहेगा और तुर्किये का समर्थन इस्लामाबाद को हासिल ही है। लिहाजा, नाहयान की यात्रा से एफएटीएफ में पाकिस्तान की सेहत पर शायद ही कोई असर पड़ेगा।

कुल मिलाकर, राष्ट्रपति नाहयान का दौरा भारत- अमीरात रिश्ते को लेकर सुखद तस्वीर बनाता है। ऊर्जा, व्यापार, खाद्य सुरक्षा, विज्ञान-प्रौद्योगिकी जैसे तमाम क्षेत्रों में दोनों एक-दूसरे का लाभ उठा सकते हैं।

Date: 21-01-26

चीन के इस कमाल से हमारे विश्वविद्यालय कुछ सीखेंगे

हरिवंश चतुर्वेदी (महानिदेशक, आईआईएलएमबीएस)

अभी एक सप्ताह पहले वैश्विक स्तर पर ग्लोबल रैंकिंग में एक धमाका हुआ है। यह धमाका नीदरलैंड्स की लीडन यूनिवर्सिटी की ग्लोबल रैंकिंग ने किया है। लीडन रैंकिंग में शीर्षस्थ 10 विश्वविद्यालयों में चीन का जे- जियांग विश्वविद्यालय नंबर एक पर आ गया है और उसने हावर्ड को पहले से तीसरे स्थान पर धकेल दिया है। बाकी सात स्थानों पर भी चीन के कुछ शीर्षस्थ विश्वविद्यालयों का कब्जा हो गया है। आज से 25 वर्ष पूर्व, चीन के जे- जियांग यूनिवर्सिटी शीर्ष 25 में भी नहीं थी। पिछले 25 वर्षों में चीनी विश्वविद्यालयों ने जो कुछ कर दिखाया है, इससे आने वाले दशकों में उच्च शिक्षा में भारी उतार- चढ़ाव के संकेत मिलते हैं। जरा सोचिए, हमारे अपने शीर्ष विश्वविद्यालय कहां खड़े हैं ?

चीनी विश्वविद्यालयों की सफलता रातोंरात संभव नहीं हुई है। इसके पीछे उनकी सरकार द्वारा 40 वर्षों से शोध को दी गई प्राथमिकता है। चीन में ज्यादातर विश्वविद्यालय सरकार की वित्तीय मदद से चलते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर शोध कार्यों को निर्देशित किया जाता है। चीनी विश्वविद्यालयों ने वैश्विक पत्रिकाओं में बड़े पैमाने पर प्रकाशन किए हैं। अंग्रेजी में उच्च गुणवत्ता वाले शोध पत्रों का वैश्विक स्तर पर अधिक उल्लेख हुआ। चीनी विश्वविद्यालयों की सफलता का राज राष्ट्रीय प्राथमिकता से जुड़ा शोध- कार्य है, जैसे सेमीकंडक्टर, क्वांटम टेक्नोलॉजी, बायो-टेक्नोलॉजी जैसे क्षेत्रों में लक्षित अनुसंधान इसके लिए चीन ने विदेश में शोधरत अपने नागरिकों को वापस बुलाया और वैश्विक प्रतिभाओं की भर्ती की गई। चीन का रिसर्च इकोसिस्टम और पैमाना भारत की तुलना में बहुत विशाल व मजबूत है। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं- बड़े विश्वविद्यालय, बड़े शोध समूह, साझा प्रयोगशालाएं और टीम-आधारित शोध संस्कृति । ये विश्वविद्यालय शोध और विकास में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर कड़ी नजर बनाए रखते हैं और उद्योगों से मिलकर योजनाओं को अंजाम देते हैं।

क्या चीन की सफलता से भारत कुछ सीख सकता है ? इसके लिए हमें शोध को उच्च शिक्षा का केंद्र-बिंदु बनाना होगा। हमें अनुसंधान में निवेश और बढ़ाना होगा । भारत को विश्वस्तरीय रिसर्च इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित करना होगा। इसके लिए साझा प्रयोगशालाएं, शोध- परिसर और उत्कृष्टता केंद्र बनाने होंगे। ये सब काम सरकार अकेली नहीं कर पाएगी। निजी व अंतरराष्ट्रीय सहयोग द्वारा इसे मुमकिन करना होगा। शिक्षकों की वैश्विक स्तर पर भर्ती भी जरूरी है। प्रतिस्पद्ध वेतन, शोध में समर्थन, अकादमिक स्वायत्तता के क्षेत्रों में प्रगतिशील कदम उठाने होंगे। हमें राष्ट्रीय प्राथमिकताओं से जुड़े शोध कार्यों पर जोर देना होगा पेटेंट, स्टार्ट-अप व सामाजिक प्रभाव पर और अधिक जोर देना होगा।

चीनी विश्वविद्यालयों की ग्लोबल रैंकिंग में सफलता से यह कतई निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि हमारे विश्वविद्यालयों में इसके लिए कुछ नहीं किया जा रहा है। बजट 2025- 26 में उच्च शिक्षा पर 50,067 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया, जिसमें रिसर्च मद में आंशिक खर्च रखा गया है। इसमें राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन को 2,000 करोड़ रुपये आवैटित किए गए। प्रधानमंत्री रिसर्च फेलो योजना पर भी 1,660 करोड़ रुपये वार्षिक व्यय का प्रावधान रखा गया। इसी तरह, राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के अंतर्गत अनुसंधान उत्कृष्टता और वैश्विक

जुड़ाव को भारतीय उच्च शिक्षा के रूपांतरण का एक स्तंभ माना गया है। पिछले दशक में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फैकल्टी और विद्यार्थी का आदान-प्रदान और पीएचडी के संयुक्त निर्देशन पर जोर दिया गया है। वर्ष 2016 में शिक्षा मंत्रालय ने एएनएआई आरएफ रैंकिंग शुरू की थी, जिससे पिछले एक दशक में शोध और विकास के क्षेत्र में उत्साहवर्द्धक परिणाम आए हैं। इस रैंकिंग में शोध और विकास को 30 प्रतिशत वजन दिया जाता है। परंतु अभी यह स्वैच्छिक है, सिर्फ 40 प्रतिशत विश्वविद्यालय और 15 प्रतिशत कॉलेज ही इसमें भाग ले रहे हैं।

हालांकि, अनुसंधान पर अधिक कोष आवंटित किए जा रहे हैं, किन्तु वैश्विक प्रतिस्पर्धा और शोध-आधारित रैंकिंग के लिए यह नाकाफी है। भारतीय विश्वविद्यालयों को ग्लोबल रैंकिंग में बेहतर प्रदर्शन के लिए सरकार से वित्तीय समर्थन की प्रवल जरूरत होगी।